13. गुल्ली–डंडा

प्रेमचन्द

लेखक परिचय –

प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई, 1880 को वाराणसी के निकट लमही गाँव में हुआ । इनकी माता का नाम आनन्दी देवी एवं पिता का नाम मुंशी अजायबराम था। ये लमही डाकघर में डाकमुंशी थे। सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता का तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त होने से इनका बचपन एवं किशोर जीवन संघर्षमय रहा। इनका मूल नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। पढ़ने का शौक इनको बपचन से ही था। 1898 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ पढ़ाई जारी रखते हुए 1910 में इण्टर और 1919 में बी.ए. पास किया। बी.ए. करने के पश्चात् आप शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। 1906 में इन्होंने विधवा विवाह का समर्थन करते हुए बाल-विधवा शिवरानी देवी से दूसरा विवाह किया। उनके तीन सन्तानें हुईं। 'सोजे वतन' पर रोक तथा लेखन बन्द करने के अँग्रेज सरकार के आदेश के बाद मुंशी दयानारायण की सलाह से इन्होंने प्रेमचन्द नाम से लेखन प्रारम्भ किया। यह नाम ही आगे चलकर प्रसिद्ध हो गया। उर्दू में लेखन कार्य नवाबराय के नाम से करते रहे थे। उनका अन्तिम उपन्यास 'मंगलसूत्र' उनकी लम्बी बीमारी एवं तत्पश्चात् निधन के कारण पूरा न हो सका। इनके पुत्र अमृतराय ने इस उपन्यास को पूरा कर पुत्रधर्म का निर्वहण किया।

मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य को नाटक, निबन्ध, उपन्यास एवं कहानी जैसी अनेक विधाओं से समृद्ध किया; साथ ही उन्होंने सम्पादन एवं अनुवाद कार्य भी किया परन्तु इनको प्रसिद्धि एक कथाकार एवं उपन्यासकार के रूप में ही मिली। बंगाली के प्रसिद्ध साहित्यकार शरतचन्द्र ने इन्हें उपन्यास सम्राट की उपाधि दी। प्रेमचन्द तत्पश्चात् उपन्यास सम्राट नाम से प्रसिद्ध रहे। इनका रचना संसार इस प्रकार है – **नाटक** – 'संग्राम' (1922 ई.) एवं 'कर्बला' (1928 ई.)। **निबन्ध / लेख** – विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं में प्रेमचन्द के निबन्ध छपते रहे। जिनमें इन्होंने सामाजिक एवं साहित्यिक चिन्ताओं की अभिव्यक्ति की है। प्रेमचन्द के निबन्धों का संकलन 'प्रेमचन्द : विविध प्रसंग' जिसके तीन भाग हैं तथा 'प्रेमचन्द : कुछ विचार' नाम की पुस्तकों में मिलता है। इनमें से कुछ प्रमुख निबन्ध 'साहित्य का उद्देश्य, कहानी कला (भाग 1, 2, 3), हिन्दी उर्दू की एकता, महाजनी सभ्यता, उपन्यास, जीवन में साहित्य का स्थान आदि है। **अनुवाद** – 1. टॉलस्टॉय की कहानियाँ (1923 ई.), गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का 'हड़ताल' (1930 ई.), 'चाँदी की डिबिया' (1931ई.) और 'न्याय' (1931 ई.) नाम से अनुवाद किया।

डॉ. कमल किशोर गोयनका के अनुसार प्रेमचन्द ने कुल 301 **कहानियाँ** लिखी हैं जिनमें से 3 अभी अप्राप्य हैं। इनकी प्रथम कहानी कौनसी है यह तय करना बड़ा ही कठिन है; फिर भी कुछ विद्वान 'संसार का अनमोल रतन' को प्रेमचन्द की पहली कहानी मानते हैं, तो कुछ 'पंच परमेश्वर' (1916 ई.) को प्रथम कहानी मानते हैं। प्रेमचन्द का पहला कहानी संग्रह 'सोजे वतन' नाम से जून 1908 में प्रकाशित हुआ। इनके जीवनकाल में कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए– 1. सप्त सरोज, 2. नवनिधि, 3. प्रेम पूर्णिमा, 4.

प्रेम-पचीसी, 5. प्रेम-प्रतिमा, 6. प्रेम-द्वादशी, 7. समर यात्रा, 8. मानसरोवर : भाग 1 व 2 और कफन। कफन प्रेमचन्द की अन्तिम कहानी मानी जाती है। प्रेमचन्द की मृत्यु के पश्चात् इनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 खण्डों में प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द जी की कहानियों के विकास-क्रम को तीन काल-खण्डों में बाँट सकते हैं– प्रथम–1916 से 1920 तक, द्वितीय–1620 से 1930 तक एवं तृतीय–1930 से 1936 तक। इन कालों में कहानियों के अलग-अलग रूप सामने आते हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ – 1922 ई. में 'माधुरी' पत्रिका का सम्पादन, 1930 ई. में 'हंस' मासिक का प्रारम्भ, प्रकाशन एवं सम्पादन तथा 1932 ई. में 'जागरण' साप्ताहिक का सम्पादन।

उपन्यास – प्रेमचन्द द्वारा कुल पन्द्रह उपन्यास लिखे गए जिनमें से काल क्रमानुसार निम्नांकित प्रमुख हैं – 1. वरदान (अनुदित) (1921 ई.) में, 2. प्रेमा (1907 ई.), 3. रूठी रानी (1907 ई.), 4. सेवासदन (1918 ई.), 5. प्रेमाश्रम (1921 ई.), 6. रंगभूमि (1925 ई.), 7. कायाकल्प (1926 ई.), 8. निर्मला (1927 ई.), 9. गबन (1931 ई.), 10. कर्मभूमि (1932 ई.), 11. गोदान (1936 ई.), 12. मंगलसूत्र (अधूरा 1948 ई.) में प्रकाशित।

पाठ परिचय –

प्रस्तुत कहानी 'गुल्ली-डंडा' में बपचन की यादें संजोई गई हैं। कहानी बड़े कौशल से इस सच्चाई को चरितार्थ करती है कि पद और प्रतिष्ठा, मनुष्य-मनुष्य के बीच के नैसर्गिक सम्बन्ध को समाप्त कर देती है। कहानी में कथा-नायक और गया दोनों बालसखा हैं। दोनों ही बाल अवस्था में बिना किसी भेदभाव के गुल्ली-डंडा खेलते थे। कथा–नायक जो कि थानेदार का लड़का था, दाँव देने के विवाद में 'गया' के हाथों पिट भी गया था, परन्तु उसने किसी से शिकायत नहीं की। बीस साल बाद कथा-नायक जो अब इन्जीनियर हो गया है, उसी गाँव में आता है। यहाँ वह बचपन की समृतियों को सजीव करने के लिए गया से मिलता है और उसके साथ गुल्ली-डंडा खेलना चाहता है। उसके बहुत आग्रह पर गया खेलता तो है लेकिन उसके खेल में बपचन वाली बात कथा-नायक को नजर नहीं आती है। यहाँ कथा-नायक सोचता है कि उसकी अफसरी 'गया' और उसके बीच दीवार बन गई है। यह दर्शाते हुए कहानी का समापन हो जाता है।

मूल पाठ –

हमारे अँग्रेज दोस्त मानें या ना मानें, मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। अब भी कभी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखता हूँ तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लॉन की जरूरत, न कोर्ट की, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गए, तो खेल शुरू हो गया।

विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब है कि उनके सामान महंगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैंकड़ा न खर्च कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार नहीं हो सकता। यहाँ गुल्ली-डंडा है कि बिना हर्र-फिटकरी के चोखा रंग देता है; पर हम अँग्रेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गई। स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खिलाएँ, जो बिना दाम-कौड़ी के खेले जाते हैं। अँगरेजी खेल उनके लिए है जिनके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो ? ठीक है, गुल्ली-डंडा से आँख फूट

जाने का भय रहता है, तो क्रिकेट से सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने, टांग टूट जाने का भय नहीं रहता! अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे भी हैं, जो थापी को वैशाखी से बदल बैठे। यह अपनी-अपनी रुचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है।

वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़कर टहनियाँ काटना, और गुल्ली-डंडे बनाना, वह लड़ाई–झगड़े, वह सरल स्वभाव, जिसमें छूत–अछूत, अमीर–गरीब का बिलकुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोंचलों की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुंजाइश ही न थी, यह उसी वक्त भूलेगा जब .... जब ....। घर वाले बिगड़ रहे हैं, पिताजी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं, अम्माँ की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचार-धारा में मेरा अंधकारमय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है, और मैं हूँ कि पदाने में मस्त हूँ, न नहाने की सुधि है, न खाने की। गुल्ली है तो जरा-सी, पर उसमें दुनिया भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में एक लड़का गया नाम का था। मुझसे दो-तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लम्बा, बन्दरों की-सी लम्बी-लम्बी, पतली-पतली उँगलियाँ, बन्दरों की-सी चपलता, वही झल्लाहट। गुल्ली कैसी ही हो, उस पर इस तरह लपकता था, जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है। मालूम नहीं, उसके माँ-बाप थे या नहीं। कहाँ रहता था, क्या खाता था; पर था हमारे गुल्ली क्लब का चैम्पियन। जिसकी तरफ वह आ जाए, उसकी जीत निश्चित थी। हम सब उसे दूर से आते देख, उसका दौड़ कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयाँ बना लेते थे।

एक दिन मैं और गया दोनों ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था। मैं पद रहा था; मगर कुछ विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन-भर मस्त रह सकते हैं; पदना एक मिनट का भी अखरता है। मैंने गला छुड़ाने के लिए सब चालें चली, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र-विहित न होने पर भी क्षम्य है, लेकिन गया अपना दाँव लिए बगैर मेरा पिंड न छोड़ता था।

मैं घर की ओर भागा। अनुनय विनय का कोई असर न हुआ।

गया ने मुझे दौड़कर पकड़ लिया और डंडा तानकर बोला– मेरा दाँव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बनके, पदने के बेर क्यों भागे जाते हो?

तुम दिन भर पदाओ तो मैं दिन-भर पदता रहूँ!

'हाँ, तुम्हे दिन-भर पदना पड़ेगा।'

'न खाने जाऊँ, न पीने जाऊँ?'

'हाँ,! मेरा दाँव दिए बिना कहीं नहीं जा सकते।'

'हाँ, मेरे गुलाम हो।'

'मैं घर जाता हूँ, देखूँ मेरा क्या कर लेते हो।'

'घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है। दाँव दिया है, दाँव लेंगे।'

'अच्छा कल मैंने अमरूद खिलाया था। वह लौटा दो।'

'वह तो पेट मे ंचला गया।'

'निकालो पेट से। तुमने क्यों खाया मेरा अमरूद? तुमने दिया था, तब मैंने खाया। मैं तुमसे माँगने न गया था।'

'जब तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दाँव न दूँगा।'

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरूद खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिए ही देते हैं। जब गया ने अमरूद खाया, तो फिर उसे मुझसे दाँव लेने का क्या अधिकार है। रिश्वत देकर तो लोग खून पचा जाते हैं। यह मेरा अमरूद यों ही हजम कर जाएगा। अमरूद पैसे के पाँच वाले थे, जो गया के बाप को भी नसीब न होंगे। यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा– मेरा दाँव देकर जाओ, अमरूद-समरूद मैं नहीं जानता।

मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था। वह मुझे जाने न देता! मैंने उसे गाली दी, उसने उससे कड़ी गाली दी, और गाली ही नहीं, एक चाँटा जमा दिया। मैंने उसे दाँत से काट लिया, उसने मेरी पीठ पर डंडा जमा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस अस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरंत आंसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हँसता हुआ घर जा पहुँचा। मैं थानेदार का लड़का एक अदने से लड़के के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ, लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

उन्हीं दिनों पिताजी का वहाँ से तबादला हो गया। नई दुनिया देखने की खुशी में ऐसा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछुड़ जाने का बिल्कुल दुःख न हुआ। पिताजी दुःखी थे। यह बड़ी आमदनी की जगह थी। अम्माजी भी दुःखी थीं, यहाँ सब चीजें सस्ती थीं, और मुहल्ले की स्त्रियों से घेराव-सा हो गया था; लेकिन मारे खुशी के फूला न समाता था। लड़कों से जीट उड़ा रहा था, वहाँ ऐसे घर थोड़े ही होते हैं। ऐसे-ऐसे ऊँचे घर हैं कि आसमान से बातें करते हैं। वहाँ के अँगरेजी स्कूल में कोई मास्टर लड़कों को पीटे, तो उसे जेहल हो जाए। मेरे मित्रों की फैली हुई आँखें और चकित मुद्रा बतला रही थी कि मैं उनकी निगाह में कितना ऊँचा उठ गया हूँ। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे?उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे– तुम भगवान् हो भाई, जाओ। हमें तो इसी ऊजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुजर गए। मैंने इंजीनियरी पास की और उसी जिले का दौरा करता हुआ उसी कस्बे में पहुँचा और डाक बंगले में ठहरा। उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बाल स्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठायी और कस्बे की सैर करने निकला। आँख किसी प्यासे पथिक की भाँति बचपन के उन क्रीड़ा-स्थलों को देखने के लिए व्याकुल हो रही थी; पर उस परिचित नाम के सिवा वहाँ और कुछ परिचित न था। जहाँ खंडहर था, वहाँ पक्के मकान खड़े थे। जहाँ बरगद का पुराना पेड़ था, वहाँ अब सुन्दर बगीचा था। स्थान की काया-पलट हो गई थी। अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान न होता, तो मैं इसे पहचान भी न सकता। बचपन की संचित और अमर स्मृतियाँ बाँह खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं, मगर वह दुनिया बदल गई थी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपटकर रोऊँ और

कहूँ, तुम मुझे भूल गईं! मैं तो अब भी तुम्हारा वहीं रूप देखना चाहता हूँ।

सहसा एक खुली हुई जगह में मैंने दो–तीन लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखा। एक क्षण के लिए मैं अपने को बिल्कुल भूल गया। भूल गया कि मैं एक ऊँचा अफसर हूँ, साहबी ठाठ में, रोब और अधिकार के आवरण में।

जाकर एक लड़के से पूछा– क्यों बेटे, यहाँ कोई गया नाम का आदमी है ?

एक लड़के ने गुल्ली-डंडा समेटकर सहमे हुए स्वर में कहा- कौन गया?गया चर्मकार।

मैंने यों ही कहा– हाँ–हाँ वही। गया नाम का कोई आदमी है तो ? शायद वही हो।

'हाँ, है तो।

'जरा उसे बुला सकते हो ?'

लड़का दौड़ता हुआ गया और एक क्षण में एक पाँच हाथ के काले देव को साथ लिए आता दिखाई दिया। मैं दूर ही से पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊँ, पर कुछ सोचकर रह गया। बोला–कहो, गया, मुझे पहचानते हो ?

गया ने झुककर सलाम किया– हाँ मालिक, भला पहचानूँगा क्यों नहीं! आप मजे में रहे?

'बहुत मजे में। तुम अपनी कहो ?'

'डिप्टी साहब का साईस हूँ।'

'मतई, मोहन, दुर्गा सब कहाँ हैं ? कुछ खबर है।'

'मतई तो मर गया, दुर्गा और मोहन दोनों डाकिए हो गए हैं। आप ?'

'मैं तो जिले का इंजीनियर हूँ।'

'सरकार तो पहले ही बड़े जहीन थे।'

'अब कभी गुल्ली-डंडा खेलते हो ?'

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आँखों से देखा – अब गुल्ली-डंडा क्या खेलूँगा सरकार, अब तो धन्धे से छुट्टी नहीं मिलती।

'आओ, आज हम तुम खेलें। तुम पदाना हम पदेंगे। तुम्हारा एक दाँव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।'

गया बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं एक बड़ा अफसर। हमारा और उसका क्या जोड़ ? बेचारा झेंप रहा था! लेकिन मुझे भी कुछ कम झेंप न थी; इसलिए नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था, बल्कि इसलिए कि लोग इस खेल को अजूबा समझकर इसका तमाशा बना लेंगे और अच्छी-खासी भीड़ लग जाएगी। उस भीड़ में आनन्द कहाँ रहेगा, पर खेले बगैर तो रहा नहीं जाता। आखिर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से बहुत दूर एकांत में जाकर खेलें। वहाँ कौन देखने वाला बैठा होगा। मजे से खेलेंगे और बचपन की उस मिठाई को खूब रस ले-लेकर खाएँगे। मैं गया को लेकर डाक-बंगले पर आया और मोटर में बैठकर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में एक कुल्हाड़ी ले ली। मैं गम्भीर भाव धारण किए हुए था, लेकिन गया इसे अभी तक मजाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर

उत्सुकता या आनन्द का कोई चिह्न न था। शायद वह हम दोनों में जो अन्तर हो गया था, वही सोचने में मगन था।

मैंने पूछा– तुम्हें कभी हमारी याद आती थी गया? सच कहना। गया झेंपता हुआ बोला– मैं आपको याद करता हुजूर, किस लायक हूँ। भाग में आपके साथ कुछ दिन खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती?

मैंने कुछ उदास होकर कहा– लेकिन मुझे तो बराबर, तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डंडा, जो तुमने तानकर जताया था, याद है न?

गया ने पछताते हुए कहा– वह लड़कपन था सरकार, उसकी याद न दिलाओ।

'वाह! वह मेरे बाल-जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर-सम्मान में पाता हूँ, न धन में। कुछ ऐसी मिठास थी उसमें कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।'

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन मील निकल आये। चारों तरफ सन्नाटा है। पश्चिम ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है, जहाँ आकर हम किसी समय कमल-पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झूमके बनाकर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली आ रही है। मैं लपककर एक पेड़ पर चढ़ गया और एक टहनी काट लाया। चटपट गुल्ली-डंडा बन गया। खेल शुरू हो गया। मैंने गुच्ची में गुल्ली रखकर उछाली। गुल्ली गया के सामने से निकल गई। उसने हाथ लपकाया, जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथों में गुल्ली जैसे आप-ही जाकर बैठ जाती थी। वह दाहने-बायें कहीं हो, गुल्ली उसकी हथेलियों में ही पहुँचती थी। जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो। नयी गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली सभी उससे मिल जाती थीं। जैसे उसके हाथों में कोई चुम्बक हो; गुल्लियों को खींच लेता हो, लेकिन आज गुल्ली को उससे वह प्रेम नहीं रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह-तरह की धाँधलियाँ कर रहा था। अभ्यास की कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। हुच जाने पर भी डंडा खेले जाता था, हालांकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर ओछी चोट पड़ती और वह जरा दूर पर गिर पड़ती तो मैं झपटकर उसे खुद उठा लेता दोबारा टांड लगाता। गया वह सारी बे-कायदगियाँ देख रहा था, पर कुछ न बोलता था, जैसे उसे वह सब कायदे-कानून भूल गये। उसका निशाना कितना अचूक था। गुल्ली उसके हाथ से निकलकर टन से डंडे में आकर लगती थी। उसके हाथ से छूटकर उसका काम था डंडे से टकरा जाना, लेकिन आज वह गुल्ली डंडे में लगती ही नहीं! कभी दाहिने जाती है, कभी बाएँ, कभी आगे, कभी पीछे।

आध घंटे पदाने के बाद एक बार गुल्ली डंडे में आ लगी। मैंने धाँधली की गुल्ली डंडे में नहीं लगी, बिल्कुल पास से गई, लेकिन लगी नहीं।

गया ने किसी प्रकार का असंतोष नहीं प्रकट किया।

'न लगी होगी।'

'डंडे में लगती तो क्या मैं बेईमानी करता?'

'नहीं भैया, तुम भला बेईमानी करोगे।'

बचपन में मजाल था कि मैं ऐसा घपला करके जीता बचता! यही गया गर्दन पर चढ़ बैठता, लेकिन आज मैं उसे कितनी आसानी से धोखा दिए चला जाता था। गधा है! सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली फिर डण्डे से लगी और इतने जोर से लगी, जैसे बन्दूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने अब किसी तरह की धाँधली करने का साहस मुझे इस वक्त भी न हो सका, लेकिन क्यों न एक बार सबको झूठ बताने की चेष्टा करूँ? मेरा हरज ही क्या है?मान गया तो वाह-वाह, नहीं तो दो–चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अन्धेरे का बहाना करके जल्दी से गैला छुड़ा लूँगा। फिर कौन दाँव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा– लग गई, लग गई! टन से बोली।

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा– तुमने लगते देखा?मैंने तो नहीं देखा।

'टन से बोली है सरकार!'

'और जो किसी ईंट से लग गई हो?'

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला, इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झुठलाना वैसा ही था, जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली को डण्डे में जोर से लगते देखा था, लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

'हाँ, किसी ईंट में ही लगी होगी। डण्डे में लगती तो इतनी आवाज न आती।'

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया, लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धाँधली कर लेने के बाद गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी, इसलिए जब तीसरी बार गुल्ली डण्डे में लगी, तो मैंने बड़ी उदारता से दाँव देना तय कर दिया।

गया ने कहा– अब तो अँधेरा हो गया है भैया, कल पर रखो।

मैंने सोचा, कल बहुत-सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदाए, इसलिए इसी वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

'नहीं, नहीं। अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दाँव ले लो।

'गुल्ली सूझेगी नहीं।'

'कुछ परवाह नहीं।'

गया ने पदाना शुरू किया, पर उसे अब बिल्कुल अभ्यास न था। उसने दो बार टांड लगाने का इरादा किया, पर दोनों ही बार हुच गया। एक मिनट से कम में वह दाँव पूरा कर चुका था। बेचारा घण्टा-भर पदा, पर एक मिनिट ही में अपना दाँव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

'एक दाँव और खेल लो। तुम तो पहले ही हाथ में हुच गए।'

'नहीं भैया, अब अँधेरा हो गया।'

'तुम्हारा अभ्यास छूट गया। कभी खेलते नहीं?'

'खेलने का समय कहाँ मिलता है भैया!'

हम दोनों मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते-जलते पड़ाव पर पहुँच गए। गया चलते-चलते बोला– कल यहाँ गुल्ली-डंडा होगा। सभी पुराने खिलाड़ी खेलेंगे। तुम भी आओगे? जब तुम्हें फुरसत हो,

तभी खिलाड़ियों को बुलाऊँ।

मैंने शाम का समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस-दस आदमियों की मण्डली थी। कई मेरे लड़कपन के साथी निकले! अधिकांश युवक थे, जिन्हें मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ। मैं मोटर पर बैठा-बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देखकर मैं चकित हो गया। टांड लगाता, तो गुल्ली आसमान से बात करती। कल की-सी वह झिझक, वह हिचकिचाहट, वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता, तो मैं जरूर रोने लगता। उसके डण्डे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती थी।

पदने वालों में एक युवक ने कुछ धाँधली की। उसने अपने विचार में गुल्ली लपक ली थी। गया का कहना था – गुल्ली जमीन में लगकर उछली थी। इस पर दोनों में ताल ठोकने की नौबत आई है। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता, तो जरूर मार-पीट हो जाती।

मैं खेल में न था, पर दूसरों के इस खेल में मुझे वहीं लड़कपन का आनन्द आ रहा था, जब हम सब-कुछ भूलकर खेल में मस्त हो जाते थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धाँधली की, बेईमानी की, पर उसे जरा क्रोध न आया। इसीलिए कि वह खेल न रहा था, मुझे खेला रहा था, मेरा मन रख रहा था। वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गई है। मैं अब उसका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।

•••

कठिन शब्द –

विलायती – विदेशी/ अमीराना – अमीरोचित, धनिकोचित/ गुंजाइश – स्थान, अवकाश/ गोइयाँ – साथी, सखा, खेल का साथी, सखी/ दिल्लगी – मजाक, हास–परिहास/ हजम – पाचन क्रिया, गबन, पचाना/ अस्त्र – फेंक कर चलाया जाने वाला हथियार/ जीट – डींग, गप्प/ साईस – घोड़ों की देखभाल करने वाला नौकर/ वशीकरण – वश में करने की क्रिया, सम्मोहन/ हुच जाना – गुल्ली–डंडा खेल में अपनी बारी से बाहर हो जाना/ बे–कायदगियाँ – नियम विरुद्ध, अवैध/ हरज – हानि, क्षति, नुकसान/ पड़ाव – ठहरने का स्थान/ मण्डली–समूह/ नैपुण्य –दक्षता, निपुणता, निपुण होने की अवस्था/ कचूमर–दुर्दशा, दुर्दशा करना/ साहचर्य – मित्रता, संग–साथ, मेल–मिलाप, सहचारिता/ शुमार – शामिल, गिनती, हिसाब/ व्यसन – लत, दुराचरण, बुरी आदत/ चोंचलों – दिखावों, नखरों/ हमजोलियों – साथी, सखा/ विहित – विधि के अनुरूप होने वाला, निर्धारित/ सलूक – ढंग, तौर–तरीका, व्यवहार/ नसीब – भाग्य, किस्मत, तकदीर/ लौंडे – बिगड़े हुए लड़के, छिछोरे/ पथिक – बटोही, राहगीर, मुसाफिर, यात्री/ बदा – होनी, भाग्य में लिखा हुआ/ धाँधलियाँ – हेरा–फेरी, घोटाला, धोखा, शरारत/ घपला – गोलमाल, गलत तरीके से

कार्य के कारण हुई गड़बड़ / गैला – गाड़ी के जाने लायक रास्ता / चिराग – दीपक / फुरसत – अवकाश, खाली समय / लड़कपन – बचपन, बचपना / प्रौढ़ता – परिपक्वता, वयस्कता / अदब – विनय, शिष्टाचार

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1 इस कहानी में कथा-नायक विलायती खेलों का सबसे बड़ा ऐब क्या मानते हैं ?

(क) महँगा होना (ख) सस्ता होना

(ग) चोट का डर (घ) अधिक समय लगना ( )

2 कहानी में कथा-नायक और उसका मित्र गुल्ली-डंडा खेलने कहाँ गए ?

(क) रेलवे स्टेशन (ख) पाठशाला

(ग) भीमताल (घ) अस्पताल ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1 कहानी में लेखक जिस मित्र से मिला, उसका नाम क्या है ?

2 कहानी का कथा-नायक बड़ा होकर क्या बनता है ?

3 कथा-नायक ने गया को गुल्ली-डंडा मैच देखने के लिए कब का समय दिया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. गया के व्यक्तित्व की तीन विशेषताएँ बताइए।

2. कथा-नायक को गुल्ली-डंडा खेलों का राजा क्यों लगता है ?

3. खेल में पदने से बचने के लिए कथा-नायक क्या चालें चलता है ?

4. कथा-नायक के अनुसार बच्चों में ऐसी कौनसी शक्ति होती है जो बड़ों में नहीं होती ?

5. कथा-नायक और गया के बीच स्मृतियाँ सजीव होने में कौनसी बात बाधा बनती है? और क्यों ?

निबंधात्मक प्रश्न –

1 'गुल्ली-डंडा' कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि पद और प्रतिष्ठा मनुष्य और मनुष्य के बीच के नैसर्गिक सम्बन्ध को समाप्त कर देते हैं।

2 कथा-नायक की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।

3. निम्नलिखित पद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

(क) मैं समझता था ..... यह सरासर अन्याय था।

(ख) मैं खेल में न था, ... मैं छोटा हो गया हूँ।

•••